

अध्याय चौदह

प्रकृति के तीन गुण

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; परम्—दिव्य; भूयः—फिर; प्रवक्ष्यामि—कहूँगा; ज्ञानानाम्—समस्त ज्ञान का; ज्ञानम्—ज्ञान; उत्तमम्—सर्वश्रेष्ठ; यत्—जिसे; ज्ञात्वा—जानकर; मुनयः—मुनि लोग; सर्वे—समस्त; पराम्—दिव्य; सिद्धिम्—सिद्धि को; इतः—इस संसार से; गताः—प्राप्त किया।

भगवान् ने कहा—अब मैं तुमसे समस्त ज्ञानों में सर्वश्रेष्ठ इस परम ज्ञान को पुनः कहूँगा, जिसे जान लेने पर समस्त मुनियों ने परम सिद्धि प्राप्त की है।

तात्पर्य

सातवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक श्रीकृष्ण परम सत्य भगवान् के विषय में विस्तार से बताते हैं। अब भगवान् स्वयं अर्जुन को और आगे ज्ञान दे रहे हैं। यदि कोई इस अध्याय को दार्शनिक चिन्तन द्वारा भलीभाँति समझ ले तो उसे भक्ति का ज्ञान हो जाएगा। तेरहवें अध्याय में यह स्पष्ट बताया जा चुका है कि विनयपूर्वक ज्ञान का विकास करते हुए भवबन्धन से छूटा जा सकता है। यह भी बताया जा चुका है कि प्रकृति के गुणों की संगति के फलस्वरूप ही जीव इस भौतिक जगत् में बद्ध है। अब इस अध्याय में भगवान् स्वयं बताते हैं कि वे प्रकृति के गुण कौन-कौन से हैं, वे किस प्रकार क्रिया करते हैं, किस तरह बाँधते हैं और किस प्रकार मोक्ष प्रदान करते हैं। इस अध्याय में जिस ज्ञान का प्रकाश किया गया है उसे अन्य पूर्ववर्ती अध्यायों में दिये गये ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है। इस ज्ञान को प्राप्त करके अनेक मुनियों ने सिद्धि प्राप्त की और वे वैकुण्ठलोक

के भागी हुए। अब भगवान् उसी ज्ञान को और अच्छे ढंग से बताने जा रहे हैं। यह ज्ञान अभी तक बताये गये समस्त ज्ञानयोग से कहीं अधिक श्रेष्ठ है और इसे जान लेने पर अनेक लोगों को सिद्धि प्राप्त हुई है। अतः यह आशा की जाती है कि जो भी इस अध्याय को समझेगा उसे सिद्धि प्राप्त होगी।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

शब्दार्थ

इदम्—इस; ज्ञानम्—ज्ञान को; उपाश्रित्य—आश्रय बनाकर; मम—मेरा; साधर्म्यम्—समान प्रकृति को; आगताः—प्राप्त करके; सर्गे अपि—सृष्टि में भी; न—कभी नहीं; उपजायन्ते—उत्पन्न होते हैं; प्रलये—प्रलय में; न—न तो; व्यथन्ति—विचलित होते हैं; च—भी।

इस ज्ञान में स्थिर होकर मनुष्य मेरी जैसी दिव्य प्रकृति (स्वभाव) को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार स्थित हो जाने पर वह न तो सृष्टि के समय उत्पन्न होता है और न प्रलय के समय विचलित होता है।

तात्पर्य

पूर्ण दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य भगवान् से गुणात्मक समता प्राप्त कर लेता है और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। लेकिन जीवात्मा के रूप में उसका वह स्वरूप समाप्त नहीं होता। वैदिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि जो मुक्तात्माएँ वैकुण्ठ जगत् में पहुँच चुकी हैं, वे निरन्तर परमेश्वर के चरणकमलों के दर्शन करती हुई उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगी रहती हैं। अतएव मुक्ति के बाद भी भक्तों का अपना निजी स्वरूप नहीं समाप्त होता।

सामान्यतया इस संसार में हम जो भी ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह प्रकृति के तीन गुणों द्वारा दूषित रहता है। जो ज्ञान इन गुणों से दूषित नहीं होता, वह दिव्य ज्ञान कहलाता है। जब कोई व्यक्ति इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त होता है, तो वह परमपुरुष के समकक्ष पद पर पहुँच जाता है। जिन लोगों को

चिन्मय आकाश का ज्ञान नहीं है, वे मानते हैं कि भौतिक स्वरूप के कार्यकलापों से मुक्त होने पर यह आध्यात्मिक पहचान बिना किसी विविधता के निराकार हो जाती है। लेकिन जिस प्रकार इस संसार में विविधता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में भी है। जो लोग इससे परिचित नहीं हैं, वे सोचते हैं कि आध्यात्मिक जगत् इस भौतिक जगत् की विविधता से उल्टा है। लेकिन वास्तव में होता यह है कि आध्यात्मिक जगत् (चिन्मय आकाश) में मनुष्य को आध्यात्मिक रूप प्राप्त हो जाता है। वहाँ के सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक होते हैं और यह आध्यात्मिक स्थिति भक्तिमय जीवन कहलाती है। यह वातावरण अदूषित होता है और यहाँ पर व्यक्ति गुणों की दृष्टि से परमेश्वर के समकक्ष होता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को समस्त आध्यात्मिक गुण उत्पन्न करने होते हैं। जो इस प्रकार से आध्यात्मिक गुण उत्पन्न कर लेता है, वह भौतिक जगत् के सृजन या उसके विनाश से प्रभावित नहीं होता।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; योनिः—जन्म-स्रोत; महत्—सम्पूर्ण भौतिक जगत्; ब्रह्म—परम;
तस्मिन्—उसमें; गर्भम्—गर्भ; दधामि—उत्पन्न करता हूँ; अहम्—मैं; सम्भवः—
सम्भावना; सर्व-भूतानाम्—समस्त जीवों का; ततः—तत्पश्चात्; भवति—होता है;
भारत—हे भरत पुत्र।

हे भरतपुत्र! ब्रह्म नामक समग्र भौतिक वस्तु जन्म का स्रोत है और मैं इसी ब्रह्म को गर्भस्थ करता हूँ, जिससे समस्त जीवों का जन्म सम्भव होता है।

तात्पर्य

यह संसार की व्याख्या है—जो कुछ घटित होता है वह क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के संयोग से होता है। प्रकृति और जीव का यह संयोग स्वयं भगवान् द्वारा सम्भव बनाया जाता है। महत्-तत्त्व ही समग्र ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण कारण है और भौतिक कारण की समग्र वस्तु, जिसमें प्रकृति के तीनों गुण रहते हैं, कभी-कभी ब्रह्म कहलाती है। परमपुरुष इसी

समग्र वस्तु को गर्भस्थ करते हैं, जिससे असंख्य ब्रह्माण्ड सम्भव हो सके हैं। वैदिक साहित्य में (मुण्डक उपनिषद् १.१.९) इस समग्र भौतिक वस्तु को ब्रह्म कहा गया है—*तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमत्रं च जायते*। परमपुरुष उस ब्रह्म को जीवों के बीजों के साथ गर्भस्थ करता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि चौबीसों तत्त्व भौतिक शक्ति हैं और वे *महद् ब्रह्म* अर्थात् भौतिक प्रकृति के अवयव हैं। जैसा कि सातवें अध्याय में बताया जा चुका है कि इससे परे एक अन्य परा प्रकृति—जीव—होती है। भगवान् की इच्छा से यह परा-प्रकृति भौतिक (अपरा) प्रकृति में मिला दी जाती है, जिसके बाद इस भौतिक प्रकृति से सारे जीव उत्पन्न होते हैं।

बिच्छू अपने अंडे धान के ढेर में देती है और कभी-कभी यह कहा जाता है कि बिच्छू धान से उत्पन्न हुई। लेकिन धान बिच्छू के जन्म का कारण नहीं। वास्तव में अंडे माता बिच्छू ने दिए थे। इसी प्रकार भौतिक प्रकृति जीवों के जन्म का कारण नहीं होती। बीज भगवान् द्वारा प्रदत्त होता है और वे प्रकृति से उत्पन्न होते प्रतीत होते हैं। इस तरह प्रत्येक जीव को उसके पूर्वकर्मों के अनुसार भिन्न शरीर प्राप्त होता है, जो इस भौतिक प्रकृति द्वारा रचित होता है, जिसके कारण जीव अपने पूर्व कर्मों के अनुसार सुख या दुःख भोगता है। इस भौतिक जगत् के जीवों की समस्त अभिव्यक्तियों के कारण भगवान् हैं।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सर्व-योनिषु—समस्त योनियों में; कौन्तेय—हे कुन्तीपुत्र; मूर्तयः—स्वरूप;
सम्भवन्ति—प्रकट होते हैं; याः—जो; तासाम्—उन सबों का; ब्रह्म—परम; महत्
योनिः—जन्म स्रोत; अहम्—मैं; बीज-प्रदः—बीजप्रदाता; पिता—पिता।

हे कुन्तीपुत्र! तुम यह समझ लो कि समस्त प्रकार की जीव-योनियाँ इस भौतिक प्रकृति में जन्म द्वारा सम्भव हैं और मैं उनका बीज-प्रदाता पिता हूँ।

तात्पर्य

इस श्लोक में स्पष्ट बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवों के आदि पिता हैं। सारे जीव भौतिक प्रकृति तथा आध्यात्मिक प्रकृति के संयोग हैं। ऐसे जीव केवल इस लोक में ही नहीं, अपितु प्रत्येक लोक में, यहाँ तक कि सर्वोच्च लोक में भी, जहाँ ब्रह्मा आसीन हैं, पाये जाते हैं। जीव सर्वत्र हैं—पृथ्वी, जल तथा अग्नि के भीतर भी जीव हैं। ये सारे जीव माता भौतिक प्रकृति तथा बीजप्रदाता कृष्ण के द्वारा प्रकट होते हैं। तात्पर्य यह है कि भौतिक जगत् जीवों को गर्भ में धारण किये है, जो सृष्टिकाल में अपने पूर्वकर्मों के अनुसार विविध रूपों में प्रकट होते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतोगुण; रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण; इति—इस प्रकार; गुणाः—गुण; प्रकृति—भौतिक प्रकृति से; सम्भवाः—उत्पन्न; निबध्नन्ति—बाँधते हैं; महा-बाहो—हे बलिष्ठ भुजाओं वाले; देहे—इस शरीर में; देहिनम्—जीव को; अव्ययम्—नित्य, अविनाशी।

भौतिक प्रकृति तीन गुणों से युक्त है। ये हैं—सतो, रजो तथा तमोगुण। हे महाबाहु अर्जुन! जब शाश्वत जीव प्रकृति के संसर्ग में आता है, तो वह इन गुणों से बाँध जाता है।

तात्पर्य

दिव्य होने के कारण जीव को इस भौतिक प्रकृति से कुछ भी लेना-देना नहीं है। फिर भी भौतिक जगत् द्वारा बद्ध हो जाने के कारण वह प्रकृति के तीनों गुणों के जादू के वशीभूत होकर कार्य करता है। चूँकि जीवों को प्रकृति की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर मिले हुए हैं, अतएव वे उसी प्रकृति के अनुसार कर्म करने के लिए प्रेरित होते हैं। यही अनेक प्रकार के सुख-दुःख का कारण है।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।

सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; सत्त्वम्—सतोगुण; निर्मलत्वात्—भौतिक जगत् में शुद्धतम होने के कारण; प्रकाशकम्—प्रकाशित करता हुआ; अनामयम्—किसी पापकर्म के बिना; सुख—सुख की; सङ्गेन—संगति के द्वारा; बध्नाति—बाँधता है; ज्ञान—ज्ञान की; सङ्गेन—संगति से; च—भी; अनघ—हे पापरहित।

हे निष्पाप! सतोगुण अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक शुद्ध होने के कारण प्रकाश प्रदान करने वाला और मनुष्यों को सारे पाप कर्मों से मुक्त करने वाला है। जो लोग इस गुण में स्थित होते हैं, वे सुख तथा ज्ञान के भाव से बाँध जाते हैं।

तात्पर्य

प्रकृति द्वारा बद्ध किये गये जीव कई प्रकार के होते हैं। कोई सुखी है और कोई अत्यन्त कर्मठ है, तो दूसरा असहाय है। इस प्रकार के मनोभाव ही प्रकृति में जीव की बद्धावस्था के कारणस्वरूप हैं। *भगवद्गीता* के इस अध्याय में इसका वर्णन हुआ है कि वे किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से बद्ध हैं। सर्वप्रथम सतोगुण पर विचार किया गया है। इस जगत् में सतोगुण विकसित करने का लाभ यह होता है कि मनुष्य अन्य बद्धजीवों की तुलना में अधिक चतुर हो जाता है। सतोगुणी पुरुष को भौतिक कष्ट उतना पीड़ित नहीं करते और उसमें भौतिक ज्ञान की प्रगति करने की सृष्टि होती है। इसका प्रतिनिधि ब्राह्मण है, जो सतोगुणी माना जाता है। सुख का यह भाव इस विचार के कारण है कि सतोगुण में पापकर्मों से प्रायः मुक्त रहा जाता है। वास्तव में वैदिक साहित्य में यह कहा गया है कि सतोगुण का अर्थ ही है अधिक ज्ञान तथा सुख का अधिकाधिक अनुभव।

सारी कठिनाई यह है कि जब मनुष्य सतोगुण में स्थित होता है, तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह ज्ञान में आगे है और अन्यो की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस प्रकार वह बद्ध हो जाता है। इसके उदाहरण वैज्ञानिक तथा दार्शनिक हैं। इनमें से प्रत्येक को अपने ज्ञान का गर्व रहता है और चूँकि वे अपने रहन-सहन को सुधार लेते हैं, अतएव उन्हें भौतिक सुख की अनुभूति होती है। बद्ध जीवन में अधिक सुख का यह भाव उन्हें भौतिक प्रकृति के गुणों से बाँध देता है। अतएव वे सतोगुण में रहकर कर्म करने के प्रति आकृष्ट होते हैं। और जब तक इस प्रकार कर्म करते रहने का आकर्षण बना रहता है, तब तक उन्हें किसी न किसी प्रकार का शरीर

धारण करना होता है। इस प्रकार उनकी मुक्ति की या वैकुण्ठलोक जाने की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। वे बारम्बार दार्शनिक, वैज्ञानिक या कवि बनते रहते हैं और बारम्बार जन्म-मृत्यु के उन्हीं दोषों में बँधते रहते हैं। लेकिन माया-मोह के कारण वे सोचते हैं कि इस प्रकार का जीवन आनन्दप्रद है।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।

तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

रजः—रजोगुण; राग-आत्मकम्—आकांक्षा या काम से उत्पन्न; विद्धि—जानो;
तृष्णा—लोभ से; सङ्ग—संगति से; समुद्भवम्—उत्पन्न; तत्—वह; निबध्नाति—
बँधता है; कौन्तेय—हे कुन्तीपुत्र; कर्म-सङ्गेन—सकाम कर्म की संगति से; देहिनम्—
देहधारी को।

हे कुन्तीपुत्र! रजोगुण की उत्पत्ति असीम आकांक्षाओं तथा तृष्णाओं से होती है और इसी के कारण से यह देहधारी जीव सकाम कर्मों से बँध जाता है।

तात्पर्य

रजोगुण की विशेषता है, पुरुष तथा स्त्री का पारस्परिक आकर्षण। स्त्री पुरुष के प्रति और पुरुष स्त्री के प्रति आकर्षित होता है। यह रजोगुण कहलाता है। जब इस रजोगुण में वृद्धि हो जाती है, तो मनुष्य भौतिक भोग के लिए लालायित होता है। वह इन्द्रियतृप्ति चाहता है। इस इन्द्रियतृप्ति के लिए वह रजोगुणी मनुष्य समाज में या राष्ट्र में सम्मान चाहता है और सुन्दर सन्तान, स्त्री तथा घर सहित सुखी परिवार चाहता है। ये सब रजोगुण के प्रतिफल हैं। जब तक मनुष्य इनकी लालसा करता रहता है, तब तक उसे कठिन श्रम करना पड़ता है। अतः यहाँ पर यह स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य अपने कर्मफलों से सम्बद्ध होकर ऐसे कर्मों से बँध जाता है। अपनी स्त्री, पुत्रों तथा समाज को प्रसन्न करने तथा अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए मनुष्य को कर्म करना होता है। अतएव सारा संसार ही न्यूनाधिक रूप से रजोगुणी है। आधुनिक सभ्यता में रजोगुण का मानदण्ड ऊँचा है। प्राचीन काल में सतोगुण को उच्च अवस्था माना जाता था। यदि सतोगुणी

लोगों को मुक्ति नहीं मिल पाती, तो जो रजोगुणी हैं उनके विषय में क्या कहा जाये ?

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तमः—तमोगुण; तु—लेकिन; अज्ञान-जम्—अज्ञान से उत्पन्न; विद्धि—जानो;
मोहनम्—मोह; सर्व-देहिनाम्—समस्त देहधारी जीवों का; प्रमाद—पागलपन;
आलस्य—आलस; निद्राभिः—तथा नींद द्वारा; तत्—वह; निबध्नाति—बाँधता है;
भारत—हे भरतपुत्र ।

हे भरतपुत्र! तुम जान लो कि अज्ञान से उत्पन्न तमोगुण समस्त देहधारी जीवों का मोह है। इस गुण के प्रतिफल पागलपन (प्रमाद), आलस तथा नींद हैं, जो बद्धजीव को बाँधते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में तु शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय है। इसका अर्थ है कि तमोगुण देहधारी जीव का अत्यन्त विचित्र गुण है। यह सतोगुण के सर्वथा विपरीत है। सतोगुण में ज्ञान के विकास से मनुष्य यह जान सकता है कि कौन क्या है, लेकिन तमोगुण तो इसके सर्वथा विपरीत होता है। जो भी तमोगुण के फेर में पड़ता है, वह पागल हो जाता है और पागल पुरुष यह नहीं समझ पाता कि कौन क्या है। वह प्रगति करने के बजाय अधोगति को प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में तमोगुण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—*वस्तुयाथात्म्यज्ञानावरकं विपर्ययज्ञानजनकं तमः*—अज्ञान के वशीभूत होने पर कोई मनुष्य किसी वस्तु को यथारूप में नहीं समझ पाता। उदाहरणार्थ, प्रत्येक व्यक्ति देखता है कि उसका बाबा मरा है, अतएव वह भी मरेगा, मनुष्य मर्त्य है। उसकी सन्तानें भी मरेंगी। अतएव मृत्यु ध्रुव है। फिर भी लोग पागल होकर धन संग्रह करते हैं और नित्य आत्मा की चिन्ता किये बिना अहर्निश कठोर श्रम करते रहते हैं। यह पागलपन ही तो है। अपने पागलपन में वे आध्यात्मिक ज्ञान में कोई उन्नति नहीं कर पाते। ऐसे

लोग अत्यन्त आलसी होते हैं। जब उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया जाता है, तो वे अधिक रुचि नहीं दिखाते। वे रजोगुणी व्यक्ति की तरह भी सक्रिय नहीं रहते। अतएव तमोगुण में लिप्त व्यक्ति का एक अन्य गुण यह भी है कि वह आवश्यकता से अधिक सोता है। छह घंटे की नींद पर्याप्त है, लेकिन ऐसा व्यक्ति दिन भर में दस-बारह घंटे तक सोता है। ऐसा व्यक्ति सदैव निराश प्रतीत होता है और भौतिक द्रव्यों तथा निद्रा के प्रति व्यसनी बन जाता है। ये हैं तमोगुणी व्यक्ति के लक्षण।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सतोगुण; सुखे—सुख में; सञ्जयति—बाँधता है; रजः—रजोगुण; कर्मणि—सकाम कर्म में; भारत—हे भरतपुत्र; ज्ञानम्—ज्ञान को; आवृत्य—ढक कर; तु—लेकिन; तमः—तमोगुण; प्रमादे—पागलपन में; सञ्जयति—बाँधता है; उत—ऐसा कहा जाता है।

हे भरतपुत्र! सतोगुण मनुष्य को सुख से बाँधता है, रजोगुण सकाम कर्म से बाँधता है और तमोगुण मनुष्य के ज्ञान को ढक कर उसे पागलपन से बाँधता है।

तात्पर्य

सतोगुणी पुरुष अपने कर्म या बौद्धिक वृत्ति से उसी तरह सन्तुष्ट रहता है, जिस प्रकार दार्शनिक, वैज्ञानिक या शिक्षक अपनी अपनी विद्याओं में निरत रहकर सन्तुष्ट रहते हैं। रजोगुणी व्यक्ति सकाम कर्म में लग सकता है, वह यथासम्भव धन प्राप्त करके उसे उत्तम कार्यों में व्यय करता है। कभी-कभी वह अस्पताल खोलता है और धर्मार्थ संस्थाओं को दान देता है। ये लक्षण हैं, रजोगुणी व्यक्ति के, लेकिन तमोगुण तो ज्ञान को ढक लेता है। तमोगुण में रहकर मनुष्य जो भी करता है, वह न तो उसके लिए, न किसी अन्य के लिए हितकर होता है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।

रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण को; च—भी; अभिभूय—पार करके; सत्त्वम्—सतोगुण; भवति—प्रधान बनता है; भारत—हे भरतपुत्र; रजः—रजोगुण; सत्त्वम्—सतोगुण को; तमः—तमोगुण; च—भी; एव—उसी तरह; तमः—तमोगुण; सत्त्वम्—सतोगुण को; रजः—रजोगुण; तथा—इस प्रकार।

हे भरतपुत्र! कभी-कभी सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण को परास्त करके प्रधान बन जाता है तो कभी रजोगुण सतो तथा तमोगुणों को परास्त कर देता है और कभी ऐसा होता है कि तमोगुण सतो तथा रजोगुणों को परास्त कर देता है। इस प्रकार श्रेष्ठता के लिए निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है।

तात्पर्य

जब रजोगुण प्रधान होता है, तो सतो तथा तमोगुण परास्त रहते हैं। जब सतोगुण प्रधान होता है तो रजो तथा तमोगुण परास्त हो जाते हैं। जब तमोगुण प्रधान होता है तो रजो तथा सतोगुण परास्त हो जाते हैं। यह प्रतियोगिता निरन्तर चलती रहती है। अतएव जो कृष्णभावनामृत में वास्तव में उन्नति करने का इच्छुक है, उसे इन तीनों गुणों को लॉघना पड़ता है। प्रकृति के किसी एक गुण की प्रधानता मनुष्य के आचरण में, उसके कार्यकलापों में, उसके खान-पान आदि में प्रकट होती रहती है। इन सबकी व्याख्या अगले अध्यायों में की जाएगी। लेकिन यदि कोई चाहे तो वह अभ्यास द्वारा सतोगुण विकसित कर सकता है और इस प्रकार रजो तथा तमोगुणों को परास्त कर सकता है। इस प्रकार से रजोगुण विकसित करके तमो तथा सतो गुणों को परास्त कर सकता है। अथवा कोई चाहे तो वह तमोगुण को विकसित करके रजो तथा सतोगुणों को परास्त कर सकता है। यद्यपि प्रकृति के ये तीन गुण होते हैं, किन्तु यदि कोई संकल्प कर ले तो उसे सतोगुण का आशीर्वाद तो मिल ही सकता है और वह इसे लॉघ कर शुद्ध सतोगुण में स्थित हो सकता है, जिसे वासुदेव अवस्था कहते हैं,

जिसमें वह ईश्वर के विज्ञान को समझ सकता है। विशिष्ट कार्यों को देख कर ही समझा जा सकता है कि कौन व्यक्ति किस गुण में स्थित है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।

ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सर्व-द्वारेषु—सारे दरवाजों में; देहे अस्मिन्—इस शरीर में; प्रकाशः—प्रकाशित करने का गुण; उपजायते—उत्पन्न होता है; ज्ञानम्—ज्ञान; यदा—जब; तदा—उस समय; विद्यात्—जानो; विवृद्धम्—बढ़ा हुआ; सत्त्वम्—सतोगुण; इति उत—ऐसा कहा गया है।

सतोगुण की अभिव्यक्ति को तभी अनुभव किया जा सकता है, जब शरीर के सारे द्वार ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं।

तात्पर्य

शरीर में नौ द्वार हैं—दो आँखें, दो कान, दो नथुने, मुँह, गुदा तथा उपस्थ। जब प्रत्येक द्वार सत्त्व के लक्षण से दीपित हो जायें, तो समझना चाहिए कि उसमें सतोगुण विकसित हो चुका है। सतोगुण में सारी वस्तुएँ अपनी सही स्थिति में दिखती हैं, सही-सही सुनाई पड़ता है और सही ढंग से उन वस्तुओं का स्वाद मिलता है। मनुष्य का अन्तः तथा बाह्य शुद्ध हो जाता है। प्रत्येक द्वार में सुख के लक्षण उत्पन्न दिखते हैं और यही स्थिति होती है सत्त्वगुण की।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।

रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

लोभः—लोभ; प्रवृत्तिः—कार्य; आरम्भः—उद्यम; कर्मणाम्—कर्मों में; अशमः—अनियन्त्रित; स्पृहा—इच्छा; रजसि—रजोगुण में; एतानि—ये सब; जायन्ते—प्रकट होते हैं; विवृद्धे—अधिकता होने पर; भरत-ऋषभ—हे भरतवंशियों में प्रमुख।

हे भरतवंशियों में प्रमुख! जब रजोगुण में वृद्धि हो जाती है, तो अत्यधिक आसक्ति, सकाम कर्म, गहन उद्यम तथा अनियन्त्रित इच्छा एवं लालसा के लक्षण प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

रजोगुणी व्यक्ति कभी भी पहले से प्राप्त पद से संतुष्ट नहीं होता, वह अपना पद बढ़ाने के लिए लालायित रहता है। यदि उसे मकान बनवाना है, तो वह महल बनवाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है, मानो वह उस महल में सदा रहेगा। वह इन्द्रिय-तृप्ति के लिए अत्यधिक लालसा विकसित कर लेता है। उसमें इन्द्रियतृप्ति की कोई सीमा नहीं है। वह सदैव अपने परिवार के बीच तथा अपने घर में रह कर इन्द्रियतृप्ति करते रहना चाहता है। इसका कोई अन्त नहीं है। इन सारे लक्षणों को रजोगुण की विशेषता मानना चाहिए।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।

तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अप्रकाशः—अंधेरा; अप्रवृत्तिः—निष्क्रियता; च—तथा; प्रमादः—पागलपन; मोहः—मोह; एव—निश्चय ही; च—भी; तमसि—तमोगुण; एतानि—ये; जायन्ते—प्रकट होते हैं; विवृद्धे—बढ़ जाने पर; कुरु-नन्दन—हे कुरुपुत्र।

जब तमोगुण में वृद्धि हो जाती है, तो हे कुरुपुत्र! अंधेरा, जड़ता, प्रमत्तता तथा मोह का प्राकट्य होता है।

तात्पर्य

जहाँ प्रकाश नहीं होता, वहाँ ज्ञान अनुपस्थित रहता है। तमोगुणी व्यक्ति किसी नियम में बँधकर कार्य नहीं करता। वह अकारण ही अपनी सनक के अनुसार कार्य करना चाहता है। यद्यपि उसमें कार्य करने की क्षमता होती है, किन्तु वह परिश्रम नहीं करता। यह मोह कहलाता है। यद्यपि चेतना रहती है, लेकिन जीवन निष्क्रिय रहता है। ये तमोगुण के लक्षण हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; सत्त्वे—सतोगुण में; प्रवृद्धे—बढ़ जाने पर; तु—लेकिन; प्रलयम्—संहार, विनाश को; याति—जाता है; देह-भृत्—देहधारी; तदा—उस समय; उत्तम-विदाम्—ऋषियों के; लोकान्—लोकों को; अमलान्—शुद्ध; प्रतिपद्यते—प्राप्त करता है।

जब कोई सतोगुण में मरता है, तो उसे महर्षियों के विशुद्ध उच्चतर लोकों की प्राप्ति होती है।

तात्पर्य

सतोगुणी व्यक्ति ब्रह्मलोक या जनलोक जैसे उच्च लोकों को प्राप्त करता है और वहाँ दैवी सुख भोगता है। *अमलान्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है, “रजो तथा तमोगुणों से मुक्त”। भौतिक जगत् में अशुद्धियाँ हैं, लेकिन सतोगुण सर्वाधिक शुद्ध रूप है। विभिन्न जीवों के लिए विभिन्न प्रकार के लोक हैं। जो लोग सतोगुण में मरते हैं, वे उन लोकों को जाते हैं, जहाँ महर्षि तथा महान भक्तगण रहते हैं।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रजसि—रजोगुण में; प्रलयम्—प्रलय को; गत्वा—प्राप्त करके; कर्म-सङ्गिषु—सकाम कर्मियों की संगति में; जायते—जन्म लेता है; तथा—उसी प्रकार; प्रलीनः—विलीन होकर; तमसि—अज्ञान में; मूढ-योनिषु—पशुयोनि में; जायते—जन्म लेता है।

जब कोई रजोगुण में मरता है, तो वह सकाम कर्मियों के बीच में जन्म ग्रहण करता है और जब कोई तमोगुण में मरता है, तो वह पशुयोनि में जन्म धारण करता है।

तात्पर्य

कुछ लोगों का विचार है कि एक बार मनुष्य जीवन को प्राप्त करके आत्मा कभी नीचे नहीं गिरता। यह ठीक नहीं है। इस श्लोक के अनुसार, यदि कोई तमोगुणी बन जाता है, तो वह मृत्यु के बाद पशुयोनि को प्राप्त होता है। वहाँ से मनुष्य को विकास प्रक्रम द्वारा पुनः मनुष्य जीवन तक

आना पड़ता है। अतएव जो लोग मनुष्य जीवन के विषय में सचमुच चिन्तित हैं, उन्हें सतोगुणी बनना चाहिए और अच्छी संगति में रहकर गुणों को लाँघ कर कृष्णभावनामृत में स्थित होना चाहिए। यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। अन्यथा इसकी कोई गारंटी (निश्चितता) नहीं कि मनुष्य को फिर से मनुष्ययोनि प्राप्त हो।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।

रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कर्मणः—कर्म का; सु-कृतस्य—पुण्य; आहुः—कहा गया है; सात्त्विकम्—सात्त्विक;
निर्मलम्—विशुद्ध; फलम्—फल; रजसः—रजोगुण का; तु—लेकिन; फलम्—फल;
दुःखम्—दुःख; अज्ञानम्—व्यर्थ; तमसः—तमोगुण का; फलम्—फल।

पुण्यकर्म का फल शुद्ध होता है और सात्त्विक कहलाता है। लेकिन रजोगुण में सम्पन्न कर्म का फल दुःख होता है और तमोगुण में किये गये कर्म मूर्खता में प्रतिफलित होते हैं।

तात्पर्य

सतोगुण में किये गये पुण्यकर्मों का फल शुद्ध होता है, अतएव वे मुनिगण, जो समस्त मोह से मुक्त हैं, सुखी रहते हैं। लेकिन रजोगुण में किये गये कर्म दुःख के कारण बनते हैं। भौतिकसुख के लिए जो भी कार्य किया जाता है, उसका विफल होना निश्चित है। उदाहरणार्थ, यदि कोई गगनचुम्बी प्रासाद बनवाना चाहता है, तो उसके बनने के पूर्व अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ता है। मालिक को धन-संग्रह के लिए कष्ट उठाना पड़ता है और प्रासाद बनाने वाले श्रमियों को शारीरिक श्रम करना होता है। इस प्रकार कष्ट तो होते ही हैं। अतएव *भगवद्गीता* का कथन है कि रजोगुण के अधीन होकर जो भी कर्म किया जाता है, उसमें निश्चित रूप से महान कष्ट भोगने होते हैं। इससे यह मानसिक तुष्टि हो सकती है कि मैंने यह मकान बनवाया या इतना धन कमाया, लेकिन यह कोई वास्तविक सुख नहीं है। जहाँ तक तमोगुण का सम्बन्ध है, कर्ता को कुछ ज्ञान नहीं रहता, अतएव उसके समस्त कार्य उस समय दुःखदायक होते हैं और बाद में उसे

पशु जीवन में जाना होता है। पशु जीवन सदैव दुःखमय है, यद्यपि माया के वशीभूत होकर वे इसे समझ नहीं पाते। पशुओं का वध भी तमोगुण के कारण है। पशु-वधिक यह नहीं जानते कि भविष्य में इस पशु को ऐसा शरीर प्राप्त होगा, जिससे वह उनका वध करेगा। यही प्रकृति का नियम है। मानव समाज में यदि कोई किसी मनुष्य का वध कर दे तो उसे प्राणदण्ड मिलता है। यह राज्य का नियम है। अज्ञानवश लोग यह अनुभव नहीं करते कि परमेश्वर द्वारा नियन्त्रित एक पूरा राज्य है। प्रत्येक जीवित प्राणी परमेश्वर की सन्तान है और उन्हें एक चींटी तक का मारा जाना सह्य नहीं है। इसके लिए मनुष्य को दण्ड भोगना पड़ता है। अतएव स्वाद के लिए पशु-वध में रत रहना घोर अज्ञान है। मनुष्य को पशुओं के वध की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ईश्वर ने अनेक अच्छी वस्तुएँ प्रदान कर रखी हैं। यदि कोई किसी कारण से मांसाहार करता है, तो यह समझना चाहिए कि वह अज्ञानवश ऐसा कर रहा है और अपने भविष्य को अंधकारमय बना रहा है। समस्त प्रकार के पशुओं में से गोवध सर्वाधिक अधम है, क्योंकि गाय हमें दूध देकर सभी प्रकार का सुख प्रदान करने वाली है। गोवध एक प्रकार से सबसे अधम कर्म है। वैदिक साहित्य में (ऋग्वेद ९.४.६४) गोभिः प्रीणित-मत्सरम् सूचित करता है कि जो व्यक्ति दूध पीकर गाय को मारना चाहता है, वह सबसे बड़े अज्ञान में रहता है। वैदिक ग्रन्थों में (विष्णु-पुराण १.१९.६५) एक प्रार्थना भी है, जो इस प्रकार है—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

“हे प्रभु! आप गायों तथा ब्राह्मणों के हितैषी हैं और आप समस्त मानव समाज तथा विश्व के हितैषी हैं।” तात्पर्य यह है कि इस प्रार्थना में गायों तथा ब्राह्मणों की रक्षा का विशेष उल्लेख है। ब्राह्मण आध्यात्मिक शिक्षा के प्रतीक हैं और गाएँ महत्त्वपूर्ण भोजन की, अतएव इन दोनों जीवों, ब्राह्मणों तथा गायों, को पूरी सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। यही सभ्यता की वास्तविक प्रगति है। आधुनिक मानव समाज में आध्यात्मिक ज्ञान की उपेक्षा की जाती है और गोवध को प्रोत्साहित किया जाता है। इससे यही ज्ञात होता है कि मानव-समाज विपरीत दिशा में जा रहा है और

अपनी भर्त्सना का पथ प्रशस्त कर रहा है। जो सभ्यता अपने नागरिकों को अगले जन्मों में पशु बनने के लिए मार्गदर्शन करती हो, वह निश्चित रूप से मानव सभ्यता नहीं है। निस्सन्देह, आधुनिक मानव-सभ्यता रजोगुण तथा तमोगुण के कारण कुमार्ग पर जा रही है। यह अत्यन्त घातक युग है और समस्त राष्ट्रों को चाहिए कि मानवता को महानतम संकट से बचाने के लिए कृष्णभावनामृत की सरलतम विधि प्रदान करें।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वात्—सतोगुण से; सञ्जायते—उत्पन्न होता है; ज्ञानम्—ज्ञान; रजसः—रजोगुण से; लोभः—लालच; एव—निश्चय ही; च—भी; प्रमाद—पागलपन; मोहौ—तथा मोह; तमसः—तमोगुण से; भवतः—होता है; अज्ञानम्—अज्ञान; एव—निश्चय ही; च—भी।

सतोगुण से वास्तविक ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है और तमोगुण से अज्ञान, प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य

चूँकि वर्तमान सभ्यता जीवों के लिए अधिक अनुकूल नहीं है, अतएव उनके लिए कृष्णभावनामृत की संस्तुति की जाती है। कृष्णभावनामृत के माध्यम से समाज में सतोगुण विकसित होगा। सतोगुण विकसित हो जाने पर लोग वस्तुओं को असली रूप में देख सकेंगे। तमोगुण में रहने वाले लोग पशु-तुल्य होते हैं और वे वस्तुओं को स्पष्ट रूप में नहीं देख पाते। उदाहरणार्थ, तमोगुण में रहने के कारण लोग यह नहीं देख पाते कि जिस पशु का वे वध कर रहे हैं, उसी के द्वारा वे अगले जन्म में मारे जाएँगे। वास्तविक ज्ञान की शिक्षा न मिलने के कारण वे अनुत्तरदायी बन जाते हैं। इस उच्छृंखलता को रोकने के लिए जनता में सतोगुण उत्पन्न करने वाली शिक्षा देना आवश्यक है। सतोगुण में शिक्षित हो जाने पर वे गम्भीर बनेंगे और वस्तुओं को उनके सही रूप में जान सकेंगे। तब लोग सुखी तथा सम्पन्न हो सकेंगे। भले ही अधिकांश लोग

सुखी तथा समृद्ध न बन पायें, लेकिन यदि जनता का कुछ भी अंश कृष्णभावनामृत विकसित कर लेता है और सतोगुणी बन जाता है, तो सारे विश्व में शान्ति तथा सम्पन्नता की सम्भावना है। नहीं तो, यदि विश्व के लोग रजोगुण तथा तमोगुण में लगे रहे तो शान्ति और सम्पन्नता नहीं रह पायेगी। रजोगुण में लोग लोभी बन जाते हैं और इन्द्रिय-भोग की उनकी लालसा की कोई सीमा नहीं होती। कोई भी यह देख सकता है कि भले ही किसी के पास प्रचुर धन तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए पर्याप्त साधन हों, लेकिन उसे न तो सुख मिलता है, न मनःशान्ति। ऐसा संभव भी नहीं है, क्योंकि वह रजोगुण में स्थित है। यदि कोई रंचमात्र भी सुख चाहता है, तो धन उसकी सहायता नहीं कर सकता, उसे कृष्णभावनामृत के अभ्यास द्वारा अपने आपको सतोगुण में स्थित करना होगा। जब कोई रजोगुण में रत रहता है, तो वह मानसिक रूप से ही अप्रसन्न नहीं रहता अपितु उसकी वृत्ति तथा उसका व्यवसाय भी अत्यन्त कष्टकारक होते हैं। उसे अपनी मर्यादा बनाये रखने के लिए अनेकानेक योजनाएँ बनानी होती हैं। यह सब कष्टकारक है। तमोगुण में लोग पागल (प्रमत्त) हो जाते हैं। अपनी परिस्थितियों से ऊब कर के मद्य-सेवन की शरण ग्रहण करते हैं और इस प्रकार वे अज्ञान के गर्त में अधिकाधिक गिरते हैं। जीवन में उनका भविष्य-जीवन अन्धकारमय होता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ऊर्ध्वम्—ऊपर; गच्छन्ति—जाते हैं; सत्त्व-स्थाः—जो सतोगुण में स्थित हैं; मध्ये—मध्य में; तिष्ठन्ति—निवास करते हैं; राजसाः—रजोगुणी; जघन्य—गर्हित; गुण—गुण; वृत्ति-स्थाः—जिनकी वृत्तियाँ या व्यवसाय; अधः—नीचे, निम्न; गच्छन्ति—जाते हैं; तामसाः—तमोगुणी लोग।

सतोगुणी व्यक्ति क्रमशः उच्च लोकों को ऊपर जाते हैं, रजोगुणी इसी पृथ्वीलोक में रह जाते हैं, और जो अत्यन्त गर्हित तमोगुण में स्थित हैं, वे नीचे नरक लोकों को जाते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में तीनों गुणों के कर्मों के फल को स्पष्ट रूप से बताया गया है। ऊपर के लोकों या स्वर्गलोकों में, प्रत्येक व्यक्ति अत्यन्त उन्नत होता है। जीवों में जिस मात्रा में सतोगुण का विकास होता है, उसी के अनुसार उसे विभिन्न स्वर्ग-लोकों में भेजा जाता है। सर्वोच्च-लोक सत्य-लोक या ब्रह्मलोक है, जहाँ इस ब्रह्माण्ड के प्रधान व्यक्ति, ब्रह्माजी निवास करते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं कि ब्रह्मलोक में जिस प्रकार जीवन की आश्चर्यजनक परिस्थिति है, उसका अनुमान करना कठिन है। तो भी सतोगुण नामक जीवन की सर्वोच्च अवस्था हमें वहाँ तक पहुँचा सकती है।

रजोगुण मिश्रित होता है। यह सतो तथा तमोगुणों के मध्य में होता है। मनुष्य सदैव शुद्ध नहीं होता, लेकिन यदि वह पूर्णतया रजोगुणी हो, तो वह इस पृथ्वी पर केवल राजा या धनी व्यक्ति के रूप में रहता है। लेकिन गुणों का मिश्रण होते रहने से वह नीचे भी जा सकता है। इस पृथ्वी पर रजो या तमोगुणी लोग बलपूर्वक किसी मशीन के द्वारा उच्चतर-लोकों में नहीं पहुँच सकते। रजोगुण में इसकी भी सम्भावना है कि अगले जीवन में कोई प्रमत्त हो जाये।

यहाँ पर निम्नतम गुण, तमोगुण, को अत्यन्त गर्हित (जघन्य) कहा गया है। अज्ञानता (तमोगुण) विकसित करने का परिणाम अत्यन्त भयावह होता है। यह प्रकृति का निम्नतम गुण है। मनुष्य-योनि से नीचे पक्षियों, पशुओं, सरीसृपों, वृक्षों आदि की अस्सी लाख योनियाँ हैं, और तमोगुण के विकास के अनुसार ही लोगों को ये अधम योनियाँ प्राप्त होती रहती हैं। यहाँ पर *तामसाः* शब्द अत्यन्त सार्थक है। यह उनका सूचक है, जो उच्चतर गुणों तक ऊपर न उठ कर निरन्तर तमोगुण में ही बने रहते हैं। उनका भविष्य अत्यन्त अंधकारमय होता है।

तमोगुणी तथा रजोगुणी लोगों के लिए सतोगुणी बनने का सुअवसर है और यह कृष्णभावनामृत विधि से मिल सकता है। लेकिन जो इस सुअवसर का लाभ नहीं उठाता, वह निम्नतर गुणों में बना रहेगा।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्यम्—दूसरा; गुणेभ्यः—गुणों के अतिरिक्त; कर्तारम्—कर्ता; यदा—जब; द्रष्टा—देखने वाला; अनुपश्यति—ठीक से देखता है; गुणेभ्यः—गुणों से; च—तथा; परम्—दिव्य; वेत्ति—जानता है; मत्-भावम्—मेरे दिव्य स्वभाव को; सः—वह; अधिगच्छति—प्राप्त होता है।

जब कोई यह अच्छी तरह जान लेता है कि समस्त कार्यों में प्रकृति के तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य कोई कर्ता नहीं है और जब वह परमेश्वर को जान लेता है, जो इन तीनों गुणों से परे है, तो वह मेरे दिव्य स्वभाव को प्राप्त होता है।

तात्पर्य

समुचित महापुरुषों से केवल समझकर तथा समुचित ढंग से सीख कर मनुष्य प्रकृति के गुणों के सारे कार्यकलापों को लाँघ सकता है। वास्तविक गुरु कृष्ण हैं और वे अर्जुन को यह दिव्य ज्ञान प्रदान कर रहे हैं। इसी प्रकार जो लोग पूर्णतया कृष्णभावना-भावित हैं, उन्हीं से प्रकृति के गुणों के कार्यों के इस ज्ञान को सीखना होता है। अन्यथा मनुष्य का जीवन कुमार्ग में चला जाता है। प्रामाणिक गुरु के उपदेश से जीव अपनी आध्यात्मिक स्थिति, अपने भौतिक शरीर, अपनी इन्द्रियों, तथा प्रकृति के गुणों के अपनी बद्धावस्था होने के बारे में जान सकता है। वह इन गुणों की जकड़ में होने से असहाय होता है लेकिन अपनी वास्तविक स्थिति देख लेने पर वह दिव्य स्तर को प्राप्त कर सकता है, जिसमें आध्यात्मिक जीवन के लिए अवकाश होता है। वस्तुतः जीव विभिन्न कर्मों का कर्ता नहीं होता। उसे बाध्य होकर कर्म करना पड़ता है, क्योंकि वह विशेष प्रकार के शरीर में स्थित रहता है, जिसका संचालन प्रकृति का कोई गुण करता है। जब तक मनुष्य को किसी आध्यात्मिक मान्यता प्राप्त व्यक्ति की सहायता नहीं मिलती, तब तक वह यह नहीं समझ सकता कि वह वास्तव में कहाँ स्थित है। प्रामाणिक गुरु की संगति से वह अपनी वास्तविक स्थिति समझ सकता है और इसे समझ लेने पर, वह पूर्ण कृष्णभावनामृत में स्थिर हो सकता है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कभी भी प्रकृति के गुणों के चमत्कार से नियन्त्रित नहीं होता। सातवें अध्याय में बताया जा चुका है कि जो कृष्ण की शरण में जाता है, वह प्रकृति के कार्यों से मुक्त हो जाता

है। जो व्यक्ति वस्तुओं को यथारूप में देख सकता है, उस पर प्रकृति का प्रभाव क्रमशः घटता जाता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।

जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

गुणान्—गुणों को; एतान्—इन सब; अतीत्य—लाँघ कर; त्रीन्—तीन; देही—देहधारी; देह—शरीर; समुद्भवान्—उत्पन्न; जन्म—जन्म; मृत्यु—मृत्यु; जरा—बुढ़ापे का; दुःखैः—दुःखों से; विमुक्तः—मुक्त; अमृतम्—अमृत; अश्नुते—भोगता है।

जब देहधारी जीव भौतिक शरीर से सम्बद्ध इन तीनों गुणों को लाँघने में समर्थ होता है, तो वह जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा उनके कष्टों से मुक्त हो सकता है और इसी जीवन में अमृत का भोग कर सकता है।

तात्पर्य

इस श्लोक में बताया गया है कि किस प्रकार इसी शरीर में कृष्णभावनाभावित होकर दिव्य स्थिति में रहा जा सकता है। संस्कृत शब्द देही का अर्थ है देहधारी। यद्यपि मनुष्य इस भौतिक शरीर के भीतर रहता है, लेकिन अपने आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति के द्वारा वह प्रकृति के गुणों के प्रभाव से मुक्त हो सकता है। वह इसी शरीर में आध्यात्मिक जीवन का सुखोपभोग कर सकता है, क्योंकि इस शरीर के बाद उसका वैकुण्ठ जाना निश्चित है। लेकिन वह इसी शरीर में आध्यात्मिक सुख उठा सकता है। दूसरे शब्दों में, कृष्णभावनामृत में भक्ति करना भव-पाश से मुक्ति का संकेत है और अध्याय १८ में इसकी व्याख्या की जायेगी। जब मनुष्य प्रकृति के गुणों के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, तो वह भक्ति में प्रविष्ट होता है।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।

किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अर्जुनः उवाच—अर्जुन ने कहा; कैः—किन; लिङ्गैः—लक्षणों से; त्रीन्—तीनों; गुणान्—गुणों को; एतान्—ये सब; अतीतः—लाँघा हुआ; भवति—है; प्रभो—हे प्रभु; किम्—क्या; आचारः—आचरण; कथम्—कैसे; च—भी; एतान्—ये; त्रीन्—तीनों; गुणान्—गुणों को; अतिवर्तते—लाँघता है।

अर्जुन ने पूछा—हे भगवान्! जो इन तीनों गुणों से परे है, वह किन लक्षणों के द्वारा जाना जाता है? उसका आचरण कैसा होता है? और वह प्रकृति के गुणों को किस प्रकार लाँघता है?

तात्पर्य

इस श्लोक में अर्जुन के प्रश्न अत्यन्त उपयुक्त हैं। वह उस पुरुष के लक्षण जानना चाहता है, जिसने भौतिक गुणों को लाँघ लिया है। सर्वप्रथम वह ऐसे दिव्य पुरुष के लक्षणों के विषय में जिज्ञासा करता है कि कोई कैसे समझे कि उसने प्रकृति के गुणों के प्रभाव को लाँघ लिया है? उसका दूसरा प्रश्न है कि ऐसा व्यक्ति किस प्रकार रहता है और उसके कार्यकलाप क्या हैं? क्या वे नियमित होते हैं, या अनियमित? फिर अर्जुन उन साधनों के विषय में पूछता है, जिससे वह दिव्य स्वभाव (प्रकृति) प्राप्त कर सके। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब तक कोई उन प्रत्यक्ष साधनों को नहीं जानता, जिनसे वह सदैव दिव्य पद पर स्थित रहे, तब तक लक्षणों के दिखने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव अर्जुन द्वारा पूछे गये ये सारे प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और भगवान् उनका उत्तर देते हैं।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
 न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥
 उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
 गुणा वर्तन्त इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥
 समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
 तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।

सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

श्री- भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; प्रकाशम्— प्रकाश; च— तथा; प्रवृत्तिम्— आसक्ति; च— तथा; मोहम्— मोह; एव च— भी; पाण्डव— हे पाण्डुपुत्र; न द्वेष्टि— घृणा नहीं करता; सम्प्रवृत्तानि— यद्यपि विकसित होने पर; न निवृत्तानि— न ही विकास के रुकने पर; काङ्क्षति— चाहता है; उदासीन-वत्— निरपेक्ष की भाँति; आसीनः— स्थित; गुणैः— गुणों के द्वारा; यः— जो; न— कभी नहीं; विचाल्यते— विचलित होता है; गुणाः— गुण; वर्तन्ते— कार्यशील होते हैं; इति एवम्— इस प्रकार जानते हुए; यः— जो; अवतिष्ठति— रहा आता है; न— कभी नहीं; इङ्गते— हिलता डुलता है; सम— समान; दुःख— दुःख; सुखः— तथा सुख में; स्व-स्थः— अपने में स्थित; सम— समान रूप से; लोष्ट— मिट्टी का ढेला; अश्म— पत्थर; काञ्चनः— सोना; तुल्य— समभाव; प्रिय— प्रिय; अप्रियः— तथा अप्रिय को; धीरः— धीर; तुल्य— समान; निन्दा— बुराई; आत्म-संस्तुतिः— तथा अपनी प्रशंसा में; मान— सम्मान; अपमानयोः— तथा अपमान में; तुल्यः— समान; तुल्यः— समान; मित्र— मित्र; अरि— तथा शत्रु के; पक्षयोः— पक्षों या दलों को; सर्व— सबों का; आरम्भ— प्रयत्न, उद्यम; परित्यागी— त्याग करने वाला; गुण-अतीतः— प्रकृति के गुणों से परे; सः— वह; उच्यते— कहा जाता है ।

भगवान् ने कहा— हे पाण्डुपुत्र! जो प्रकाश, आसक्ति तथा मोह के उपस्थित होने पर न तो उनसे घृणा करता है और न लुप्त हो जाने पर उनकी इच्छा करता है, जो भौतिक गुणों की इन समस्त प्रतिक्रियाओं से निश्चल तथा अविचलित रहता है और यह जानकर कि केवल गुण ही क्रियाशील हैं, उदासीन तथा दिव्य बना रहता है, जो अपने आपमें स्थित है और सुख तथा दुख को एकसमान मानता है, जो मिट्टी के ढेले, पत्थर एवं स्वर्ण के टुकड़े को समान दृष्टि से देखता है, जो अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्रति समान बना रहता है, जो धीर है और प्रशंसा तथा बुराई, मान तथा अपमान में समान भाव से रहता है, जो शत्रु तथा मित्र के साथ समान व्यवहार करता है और

जिसने सारे भौतिक कार्यों का परित्याग कर दिया है, ऐसे व्यक्ति को प्रकृति के गुणों से अतीत कहते हैं।

तात्पर्य

अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से तीन प्रश्न पूछे और उन्होंने क्रमशः एक-एक का उत्तर दिया। इन श्लोकों में कृष्ण पहले यह संकेत करते हैं कि जो व्यक्ति दिव्य पद पर स्थित है, वह न तो किसी से ईर्ष्या करता है और न किसी वस्तु के लिए लालायित रहता है। जब कोई जीव इस संसार में भौतिक शरीर से युक्त होकर रहता है, तो यह समझना चाहिए कि वह प्रकृति के तीन गुणों में से किसी एक के वश में है। जब वह इस शरीर से बाहर हो जाता है, तो वह प्रकृति के गुणों से छूट जाता है। लेकिन जब तक वह शरीर से बाहर नहीं आ जाता, तब तक उसे उदासीन रहना चाहिए। उसे भगवान् की भक्ति में लग जाना चाहिए जिससे भौतिक देह से उसका ममत्व स्वतः विस्मृत हो जाय। जब मनुष्य भौतिक शरीर के प्रति सचेत रहता है तो वह केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म करता है, लेकिन जब वह अपनी चेतना कृष्ण में स्थानान्तरित कर देता है, तो इन्द्रियतृप्ति स्वतः रुक जाती है। मनुष्य को इस भौतिक शरीर की आवश्यकता नहीं रह जाती है और न उसे इस भौतिक शरीर के आदेशों का पालन करने की आवश्यकता रह जाती है। शरीर के भौतिक गुण कार्य करेंगे, लेकिन आत्मा ऐसे कार्यों से पृथक् रहेगा। वह किस तरह पृथक् होता है? वह न तो शरीर का भोग करना चाहता है, न उससे बाहर जाना चाहता है। इस प्रकार दिव्य पद पर स्थित भक्त स्वयमेव मुक्त हो जाता है। उसे प्रकृति के गुणों के प्रभाव से मुक्त होने के लिए किसी प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

अगला प्रश्न दिव्य पद पर आसीन व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में है। भौतिक पद पर स्थित व्यक्ति शरीर को मिलने वाले तथाकथित मान तथा अपमान से प्रभावित होता है, लेकिन दिव्य पद पर आसीन व्यक्ति कभी ऐसे मिथ्या मान तथा अपमान से प्रभावित नहीं होता। वह कृष्णभावनामृत में रहकर अपना कर्तव्य निबाहता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि कोई व्यक्ति उसका सम्मान करता है या अपमान। वह उन

बातों को स्वीकार कर लेता है, जो कृष्णभावनामृत में उसके कर्तव्य के अनुकूल हैं, अन्यथा उसे किसी भौतिक वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती, चाहे वह पत्थर हो या सोना। वह प्रत्येक व्यक्ति को जो कृष्णभावनामृत के सम्पादन में उसकी सहायता करता है, अपना मित्र मानता है और वह अपने तथाकथित शत्रु से भी घृणा नहीं करता। वह समभाव वाला होता है और सारी वस्तुओं को समान धरातल पर देखता है, क्योंकि वह इसे भलीभाँति जानता है कि उसे इस संसार से कुछ भी लेना-देना नहीं है। उसे सामाजिक तथा राजनीतिक विषय तनिक भी प्रभावित नहीं कर पाते, क्योंकि वह क्षणिक उथल-पुथल तथा उत्पातों की स्थिति से अवगत रहता है। वह अपने लिए कोई कर्म नहीं करता। कृष्ण के लिए वह कुछ भी कर सकता है, लेकिन अपने लिए वह किसी प्रकार का प्रयास नहीं करता। ऐसे आचरण से मनुष्य वास्तव में दिव्य पद पर स्थित हो सकता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

माम्—मेरी; च—भी; यः—जो व्यक्ति; अव्यभिचारेण—बिना विचलित हुए; भक्ति-योगेन—भक्ति से; सेवते—सेवा करता है; सः—वह; गुणान्—प्रकृति के गुणों को; समतीत्य—लाँघ कर; एतान्—इन सब; ब्रह्म-भूयाय—ब्रह्म पद तक ऊपर उठा हुआ; कल्पते—हो जाता है।

जो समस्त परिस्थितियों में अविचलित भाव से पूर्ण भक्ति में प्रवृत्त होता है, वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को लाँघ जाता है और इस प्रकार ब्रह्म के स्तर तक पहुँच जाता है।

तात्पर्य

यह श्लोक अर्जुन के तृतीय प्रश्न के उत्तरस्वरूप है। प्रश्न है—दिव्य स्थिति प्राप्त करने का साधन क्या है? जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यह भौतिक जगत् प्रकृति के गुणों के चमत्कार के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। मनुष्य को गुणों के कर्मों से विचलित नहीं होना चाहिए, उसे चाहिए कि अपनी चेतना ऐसे कार्यों में न लगाकर उसे कृष्ण-कार्यों में लगाए। कृष्णकार्य भक्तियोग के नाम से विख्यात हैं, जिनमें सदैव कृष्ण के लिए

कार्य करना होता है। इसमें न केवल कृष्ण ही आते हैं, अपितु उनके विभिन्न पूर्णांश भी सम्मिलित हैं—यथा राम तथा नारायण। उनके असंख्य अंश हैं। जो कृष्ण के किसी भी रूप या उनके पूर्णांश की सेवा में प्रवृत्त होता है, उसे दिव्य पद पर स्थित समझना चाहिए। यह ध्यान देना होगा कि कृष्ण के सारे रूप पूर्णतया दिव्य और सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। ईश्वर के ऐसे रूप सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ होते हैं और उनमें समस्त दिव्यगुण पाये जाते हैं। अतएव यदि कोई कृष्ण या उनके पूर्णांशों की सेवा में दृढसंकल्प के साथ प्रवृत्त होता है, तो यद्यपि प्रकृति के गुणों को जीत पाना कठिन है, लेकिन वह उन्हें सरलता से जीत सकता है। इसकी व्याख्या सातवें अध्याय में पहले ही की जा चुकी है। कृष्ण की शरण ग्रहण करने पर तुरन्त ही प्रकृति के गुणों के प्रभाव को लाँघा जा सकता है। कृष्णभावनामृत या कृष्ण-भक्ति में होने का अर्थ है, कृष्ण के साथ समानता प्राप्त करना। भगवान् कहते हैं कि उनकी प्रकृति सच्चिदानन्द स्वरूप है और सारे जीव परम के अंश हैं, जिस प्रकार सोने के कण सोने की खान के अंश हैं। इस प्रकार जीव अपनी आध्यात्मिक स्थिति में सोने के समान या कृष्ण के समान ही गुण वाला होता है। किन्तु व्यष्टित्व का अन्तर बना रहता है अन्यथा भक्तियोग का प्रश्न ही नहीं उठता। भक्तियोग का अर्थ है कि भगवान् हैं, भक्त है तथा भगवान् और भक्त के बीच प्रेम का आदान-प्रदान चलता रहता है। अतएव भगवान् में और भक्त में दो व्यक्तियों का व्यष्टित्व वर्तमान रहता है, अन्यथा भक्तियोग का कोई अर्थ नहीं है। यदि कोई भगवान् जैसे दिव्य स्तर पर स्थित नहीं है, तो वह भगवान् की सेवा नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, राजा का निजी सहायक बनने के लिए कुछ योग्यताएँ आवश्यक हैं। इस तरह भगवत्सेवा के लिए योग्यता है कि ब्रह्म बना जाय या भौतिक कल्मष से मुक्त हुआ जाय। वैदिक साहित्य में कहा गया है *ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति*। इसका अर्थ है कि गुणात्मक रूप से मनुष्य को ब्रह्म से एकाकार हो जाना चाहिए। लेकिन ब्रह्मत्व प्राप्त करने पर मनुष्य व्यष्टि आत्मा के रूप में अपने शाश्वत ब्रह्म-स्वरूप को खोता नहीं।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मणः—निराकार ब्रह्मज्योति का; हि—निश्चय ही; प्रतिष्ठा—आश्रय; अहम्—मैं हूँ;
अमृतस्य—अमर्त्य का; अव्ययस्य—अविनाशी का; च—भी; शाश्वतस्य—शाश्वत का;
च—तथा; धर्मस्य—स्वाभाविक स्थिति (स्वरूप) का; सुखस्य—सुख का;
ऐकान्तिकस्य—चरम, अन्तिम; च—भी ।

और मैं ही उस निराकार ब्रह्म का आश्रय हूँ, जो अमर्त्य, अविनाशी तथा शाश्वत है और चरम सुख का स्वाभाविक पद है ।

तात्पर्य

ब्रह्म का स्वरूप है अमरता, अविनाशिता, शाश्वतता तथा सुख । ब्रह्म तो दिव्य साक्षात्कार का शुभारम्भ है । परमात्मा इस दिव्य साक्षात्कार की मध्य या द्वितीय अवस्था है और भगवान् परम सत्य के चरम साक्षात्कार हैं । अतएव परमात्मा तथा निराकार ब्रह्म दोनों ही परम पुरुष के भीतर रहते हैं । सातवें अध्याय में बताया जा चुका है कि प्रकृति परमेश्वर की अपरा शक्ति की अभिव्यक्ति है । भगवान् इस अपरा प्रकृति में परा प्रकृति को गर्भस्थ करते हैं और भौतिक प्रकृति के लिए यह आध्यात्मिक स्पर्श है । जब इस प्रकृति द्वारा बद्धजीव आध्यात्मिक ज्ञान का अनुशीलन करना प्रारम्भ करता है, तो वह इस भौतिक जगत् के पद से ऊपर उठने लगता है और क्रमशः परमेश्वर के ब्रह्म-बोध तक उठ जाता है । ब्रह्म-बोध की प्राप्ति आत्म-साक्षात्कार की दिशा में प्रथम अवस्था है । इस अवस्था में ब्रह्मभूत व्यक्ति भौतिक पद को पार कर जाता है, लेकिन वह ब्रह्म-साक्षात्कार में पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाता । यदि वह चाहे तो इस ब्रह्मपद पर बना रह सकता है और धीरे-धीरे परमात्मा के साक्षात्कार को और फिर भगवान् के साक्षात्कार को प्राप्त हो सकता है । वैदिक साहित्य में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं । चारों कुमार पहले निराकार ब्रह्म में स्थित थे, लेकिन क्रमशः वे भक्तिपद तक उठ गए । जो व्यक्ति निराकार ब्रह्मपद से ऊपर नहीं उठ पाता, उसके नीचे गिरने का डर बना रहता है ।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भले ही कोई निराकार ब्रह्म की अवस्था को प्राप्त कर ले, किन्तु इससे ऊपर उठे बिना तथा परम पुरुष के विषय में सूचना प्राप्त किये बिना उसकी बुद्धि विमल नहीं हो पाती । अतएव ब्रह्मपद तक उठ जाने के बाद भी यदि भगवान् की भक्ति नहीं की जाती, तो नीचे गिरने का भय बना रहता है । वैदिक भाषा में यह भी कहा गया है—*रसो वै सः; रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति*—रस के आगार भगवान् श्रीकृष्ण को जान लेने पर मनुष्य वास्तव में दिव्य आनन्दमय हो जाता है (तैत्तिरीय-उपनिषद् २.७.१) । परमेश्वर छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं और जब भक्त निकट पहुँचता है तो इन छह ऐश्वर्यों का आदान-प्रदान होता है । राजा का सेवक लगभग राजा

के ही समान पद का भोग करता है। इस प्रकार के शाश्वत सुख, अविनाशी सुख तथा शाश्वत जीवन भक्ति के साथ-साथ चलते हैं। अतएव भक्ति में ब्रह्म-साक्षात्कार या शाश्वतता या अमरता सम्मिलित रहते हैं। भक्ति में प्रवृत्त व्यक्ति में ये पहले से ही प्राप्त रहते हैं।

जीव यद्यपि स्वभाव से ब्रह्म होता है, लेकिन उसमें भौतिक जगत् पर प्रभुत्व जताने की इच्छा रहती है, जिसके कारण वह नीचे गिरता है। अपनी स्वाभाविक स्थिति में जीव तीनों गुणों से परे होता है। लेकिन प्रकृति के संसर्ग से वह अपने को तीनों गुणों—सतो, रजो तथा तमोगुण—में बाँध लेता है। इन्हीं तीनों गुणों के संसर्ग के कारण उसमें भौतिक जगत् पर प्रभुत्व जताने की इच्छा होती है। पूर्ण कृष्णभावनामृत में भक्ति में प्रवृत्त होने पर वह तुरन्त दिव्य पद को प्राप्त होता है और उसमें प्रकृति को वश में करने की जो अवैध इच्छा है, वह दूर हो जाती है। अतएव भक्तों की संगति कर के भक्ति की नौ विधियों—श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि का अभ्यास करना चाहिए। धीरे-धीरे ऐसी संगति से तथा गुरु के प्रभाव से मनुष्य की प्रभुता जताने वाली इच्छा समाप्त हो जाएगी और वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में दृढ़तापूर्वक स्थित हो सकेगा। इस विधि की संस्तुति इस अध्याय के बाइसवें श्लोक से लेकर इस अन्तिम श्लोक तक की गई है। भगवान् की भक्ति अतीव सरल है, मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की सेवा में लगे, श्रीविग्रह को अर्पित भोजन का उच्छिष्ट खाए, भगवान् के चरणकमलों पर चढ़ाये गये पुष्पों की सुगंध सूँघे, भगवान् के लीलास्थलों का दर्शन करे, भगवान् के विभिन्न कार्यकलापों और उनके भक्तों के साथ प्रेम-विनिमय के बारे में पढ़े, सदा हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे // इस महामन्त्र की दिव्य ध्वनि का कीर्तन करे और भगवान् तथा उनके भक्तों के आविर्भाव तथा तिरोधानों को मनाने वाले दिनों में उपवास करे। ऐसा करने से मनुष्य समस्त भौतिक गतिविधियों से विरक्त हो जायेगा। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने को ब्रह्मज्योति या ब्रह्म-बोध के विभिन्न प्रकारों में स्थित कर सकता है, वह गुणात्मक रूप में भगवान् के तुल्य है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय “प्रकृति के तीन गुण” का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

